



पाठक वृन्द !

जय जिनेन्द्र !

काफी समय से धारणा मन मन्दिर में मचन रही श्री कि. प. पू. अनुयोगाचार्य श्री कानिशागरजी म. सा. की निश्चा में कोई साहित्य पुष्प मृजित होवें ।

कहा भी है जब भावना प्रबल होती है तो परमात्मा उसकी पूर्ति भी निश्चिन्त रूप से करता है ।

चानुस्मिन् दोगन ग्राम श्री के शिष्य रत्न मुनिराज श्री मणिप्रभगागरजी से सम्पर्क बढ़ा । गन है विद्वान् गुरुओं के शिष्य भी विद्वान् होते हैं । मणिप्रभगागरजी म. सा. साहित्य मृजित में अनुपम विद्वता रहते हैं । उनके पास लंगार पाठशालाओं में मुझे यद् वर्ग्य ब्रह्म पण्डित आया तथा लंगे वर्ग्य की समीक्षा भी ग्रहण हुआ । उसी निमित्त लंगे देहरादून में मुन्वर से उसके प्रकाशन की प्रार्थना की और मुझे प्रसन्न है कि अन्त उपस्थित श्री शमाश्रयामजी

दो शब्द

संसार एक रंग माना है । यह रंगमाना के विना प्रांगण में अनेक महापुरुष जन्म ले चुके हैं ।

ऐसे भी अनेक रत्न हो चुके हैं, जिन्होंने अपने कर्तव्य का निष्ठा के साथ पालन किया, एवं चले गये । परन्तु कुछ ऐसे अनासक्त योगी हो चुके हैं जिन्हें दिवंगत हुए, जनादिक व्यतीत हो गई, फिर भी सूर्य की तरह उनका नाम प्रांगण भी चमक रहा है, और श्रद्धा के साथ स्मरणीय हो रहा है ।

धर्म की स्थापना तीर्थंकर करते हैं किन्तु उनके द्वारा कथित एवं प्रतिपादित सिद्धांतों का प्रचार प्रसार उन महापुरुषों की आज्ञास्वी वाणी एवं सशक्त कलम से होता है । उनकी ही आज्ञास्वी वाणी एवं सशक्त कलम से प्रांगण संसार के पतित प्राणियों का उत्थान हो रहा है । भारतवर्ष आज ऐसे ही महान पुरुषों के कारण अन्य देशों के महागौरवान्वित है । ये पृथ्वी के सूर्य हैं जिनके प्रकाश से इतिहास के पन्ने आज भी चमक रहे हैं । परम प्रसन्नता के विषय है कि हमारे परमोपकारी श्रद्धेय गुरुदेव जिनके नाम की वासुधैव कुटुम्बकम् की दीक्षित होते ही हमारा मस्तक पावन होता जाता है उनका जीवन चरित्र प्रकाशित हो रहा है ।

ग्रंथ की उपयोगिता लेखक के मधुर अन्दावलि निवेद एलोकी के कारण स्वतः सिद्ध है ।

(ले० विद्युषी आर्या प्रवतिनी जो श्री प्रमोद श्री जमनालाल बागचरणी म. सा. की शिष्या आर्या विद्युत् प्रभाश्री)



में अमृतधर्मजी से दीक्षा ग्रहण की । पर दीक्षानंदी के अनुसार सं० १८१५-१६ के वैशाख वदी ३ फलोदी आसाढ़ वदी-२ जैसलमेर में खरतर गच्छाचार्य श्री जिनल मूरिजी के समीप आपने दीक्षा ग्रहण की थी । आपके प्रतिबोधक और गुरुवाचक श्री अमृतधर्मजी थे । अतः उ शिष्य से आप प्रसिद्ध है ।

गुरु परम्परा—

श्री जिनभक्ति मूरिजी के प्रीतिसागरजी नामक मुनि थे, उनके विद्वान शिष्य अमृतधर्मजी थे जिनका उसमें ब किया जा चुका है । क्षमाकल्याणजी उन्हीं के मुनिष्य अथ उपरोक्त तीनों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है

(1) जिन भक्ति सूरि—

जिनगुप्तमूरि के पट्ट पर श्री जिनभक्ति मूरि आसीन थे उनके पिता गेठ गोपीय साह हरिचन्द्र थे, जो इन्द्रपार नामक ग्राम के निवासी थे । उनकी माता श्री हीरगुप्त-दे सम्बन् १७७० ज्येष्ठ मुदी तृतीया को आपका जन्म था । जन्म नाम आपका भीमराज था और सम्बन् १८ माघ शुक्ला नवमी को दीक्षा ग्रहण करने के बाद व नाम भक्ति श्रेय आता गया । सम्बन् १७८० ज्येष्ठ

वीकानेर में आप स्वर्ग सिधारे । आपकी पादुकाएं जैसल की अमृत धर्म स्मृतिशाला में प्रतिष्ठित है (दे. हमारा वी ने जैन लेख संग्रह २ (४४) इसके अतिरिक्त आपके सम्ब में ज्ञातव्य अन्य कोई प्रमाण नहीं मिला । सं० १६७५ मि सर वदी १४ का आपको लिखित प्रति शमा कल्याण भंड में है ।

(३) वाचक अमृतधर्म जी—

कच्छ देश के ओशवँशीय वृद्ध शाखा में आपका उ हुआ था । आपका नाम अर्जुन था । दीक्षा सं० १८ फ्रागण मुदी १ में जिनलाभ सूरिजी ने भुज में दी । शत्रु यदि तीर्थों की आपने यात्रा की थी । सिद्धान्तों के यो द्दहन किये थे । आपका चित्त संवेग रंग से आपूरित थ फलतः आपने कुछ नियम ग्रहण किये थे जिसका विव नियम पत्र में मिलता है । उसके अन्त में लिखा है कि सम् १८३८ माघ मुदि ५ को आपने सर्वथा परिग्रह का त्य कर दिया था ।

सम्बत् १८२६ में श्री जिनलाभसूरिजी ने अपने पास बुन कर सं० १८२७ में आपको वाचनाचार्य पद से विभूषि किया था । उसके बाद यानि सं. १८२६ से १८४० त

विद्या गुरु—

आप का विद्याभ्यास यम उपाध्याय राजसोम और उ०
मनमोहन (रामविजयजी) के नामास्थान में हुआ था
समय से दोनों पाठक बड़े प्रख्यात विद्वान थे इनका
ज्ञात संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

उपाध्याय राजसोमजी—

स्वतन्त्रगच्छ की क्षेमकीनिशाया में १८ वीं शत
उ० लक्ष्मीवल्लभ अच्छे विद्वान और गुरुत्व हो ग
उनके गुरु भ्राता वाचक सोमहर्षजी के शिष्य बानन
समुद्र के शिष्य उ० कपूरप्रियजी के आप शिष्य थे । स
१७५४ में आप दीक्षित हुए । जन्म नाम राजू था । स
१८०१ के पूर्व आपको गच्छसायक की ओर से उपाध्याय
प्रदान किया गया था । सम्वत् १८२५ में आप तत्कालीन
समस्त उपाध्यायों में वृद्ध होने के कारण महोपाध्याय
से सम्मलंकृत थे ।

आपकी शिष्य परम्परा १८८० तक अविच्छिन्न
आ रही थी अब कोई विद्यमान नहीं रहा । आपके र
कृतियों इस प्रकार है—

(२) समस्त शतक बालावबोध मध्यत् १७८१
वन पुस्तक १५ (उपरोक्त मंत्री पुनः आग्रहात्) अत्र
राज्ये ।

(३) समयगार (नाटक) बालावबोध-संवत्
आश्विन, स्वर्गंगिरी [गणधर (चौपड़ा) गोत्रीय ज
हेतवे] प्रकाशित

(४) गीतमयी मेहा काव्य (११ संग) सं०
जोधपुर (रामसिंह राज्ये) प्रकाशित

(५) गुणमाला प्रकरणे संवत् १८१४ (हि
सूरी की आज्ञा से)

(६) चित्रसेन पद्मावती चौपाई संवत् १८
सु० १०

(७) चतुर्विंशति दिन स्तुति पंचाशिका (गा
संवत् १८१४ भाद्रवा वदी ३ बीकानेर ।

(८) भक्तामर ट्वा- संवत् १८११ जेठ सु
काला ऊना (शिष्य पुण्यशील* विद्याशील के आग्रह ने)

*संवत् १८३३ आ० स० ५ मुनरा बंदरा में क्षमाकल्यार
के पास कई नियम ग्रहण किये थे ।

में आपका चाँमासा हुआ। और वहाँ भगवती जैसे गम्भीर सूत्र की वाचना (व्याख्यान) की थी। सम्बत् १८५० तक आप अपने गुरु श्री के साथ पूर्व प्रांत में ही करते हुए धर्मोपदेश व धर्म प्रचार करते रहे। पूर्व में विहार करने से आपकी भाषा में हिन्दी का प्रभाव गोचर होता है। इसके पश्चात् वहाँ से विहार कर (सम्बत् १८५० में) पधार गये थे। सम्बत् १८५१ चातुर्मास वीकानेर कर सम्बत् १८५१ का चातुर्मास गुरु श्री के साथ ही जैसलमेर किया और वहीं सम्बत् माघ शुक्ला ८ को वाचक अमृतधर्मजी का स्वर्गवार इसके पहले और पश्चात् आपने अनेकों स्थानों में कर धर्म प्रचार किया, ग्रन्थ निर्माण किया, तीथा यात्राये की, जिनालय, जिनविम्बों की प्रतिष्ठायें की। संवतानुक्रम से भिन्न भिन्न सूचि-मय निर्देश किया गया अतः यहाँ समुच्चय आदि से आपके विहार की सम्बत्ता से यथाज्ञात सूचि दी जाती है जिससे आपके उद्यत का भली-भाँति परिचय मिल जायगा।

अब सं० १८२८ से आपके विहारानुक्रम की सूचि दी जाती है—

- „ १८६० फा० सु० ७, बीकानेर, जैसलमेर आदि
 „ १८६० पो० वदि ११, जैसलमेर ।
 „ १८६० वैशाख सुदि ७, देवीकोट स्तवन,
 „ १८६१ आषाढ़ सुदि ६, बीकानेर
 „ १८६१ भाद्र वदि ११, देसणोक, प्रतिष्ठा
 „ १८६१ फागण सुदी २, जयपुर, सुपार्श्व स्तवन
 „ १८६२ आ० सुदि १५, जयनगर, पत्र में उल्ले
 „ १८६२ चैत सुदि ८, जयपुर, क्षमाकल्याण

लिखित

- „ १८६६ फाल्गुण सुदि १५, शंभोष्वर मारवा
 संघ सह यात्रा

- „ १८६६ चैत सुदि १५, गिरनार स्तवन
 „ १८६६ कार्तिक जय नगर (आ० व्रत ग्रहण)
 „ १८६६ वैशाख सुदि २, शत्रुंजय यात्रा स्तवन
 „ १८६७ फागण वदि १३, कल्याणगढ़ । १८६७
 वन सुदी ५, पावो,

- „ १८६७ भाद्र २, मंडौर प्रतिष्ठा स्तवन
 „ १८६७ कार्तिक , पत्र,
 „ १८६७ फागण सुदि ८, जयनगर पत्र
 „ १८६७ चैत सुदि ८, जयनगर

आपको अपने निकट बुलाकर 'वाचक' पद प्रदान किया।

उपाध्याय पद प्राप्ति—

जिनचन्द सूरिजी का सम्बत् १८५६ में स्वर्गवास के अनन्तर श्री जिन हर्षसूरि उनके पद पर स्थापित गये। उन्होंने गच्छ में आपकी योग्यता सविशेष देख (१८५८ के पूर्व) आपको उपाध्याय पद से अलंकृत किया। सम्बत् १८५८-५९ में आप गच्छ नायक के साथ जैन में ही थे।

ग्रन्थ निर्माण—

व्याकरण, न्याय आदि में आपका अच्छा पांडित्य ही पर जैन सिद्धांतों (आगमों) के गूढ़ रहस्यों को भी में आपकी असाधारण गति थी। खरतरगच्छ में उस आप सर्वोपरि गीतार्थ माने जाते थे। अनेकों विद्वान् प्रश्नों या मन्देहों का समाधान आप से करते थे। नायक आचार्य भी आपकी सैद्धान्तिक सम्पत्ति को बसमन्ते थे। कई यतियों ने आपके पास विद्याव्यय पाठित्व और गीतार्थता प्राप्त की थी। प्रश्नों के म उत्तर देने में या निरकरण करने में आप सिद्धहस्त

- ४.) श्राद्ध प्रायश्चित्त विधि, बालूचर
 ५.) पर समयसार विचार संग्रह (?)
 ६.) विचार शतक वीजक
 ७. जयतिहुयरा भाषा वन्दकाव्य, पद्य ४१, मति
 (कातेला सोभा
 गूजरमल आतातनमुख
 ८.) हित शिक्षा द्वात्रिंशिका (सं. १८६८ पूर्व)
 ९.) संग्रहणी सपर्याय (प्रति महिमा भक्ति भंडा
 १६.) पार्श्व स्त्रोतवृत्ति आदि

अनुपलब्ध

- १ चौबीसी काव्य की भेय पद्धति
 २ पंच तीर्थी स्तोत्र
 ३ प्रश्नोत्तर शतक
 ४ नग्न प. खण्ड मत्त स्वरूपाष्टक
 ५ मुक्तावलि फक्किका प्रश्न
 ६ समाप्ततंत्र संग
 ७ सूक्ति रत्नावली भाषा
 ८ अलोयणा विधि भाषा

किये थे जिनमें से कुछ ये हैं—

- १) संवत् १८३३ श्रावण सुदि ५, मनरावंदिर, पं- पुण्य
गण नियम पत्र
- २) संवत् १८४७ मिगसर वदि ५, श्रावक मूलचंददि
आपका नित्य स्मरण करने का नि
- ३) संवत् १८५० आपाढ वदि १३, श्राविका लालां वदि
- ४) संवत् १८५० फाल्गुण वदि ३, श्राविका फूलां वदि
- ५) संवत् १८५६ आपाढ सुदि ५, श्राविका चम्पेली
१८५४ अ. व. जयनगर सुराणा मगनीराम व्रत ५८
- ६) संवत् १८६६ काती जयनगरे, वाफणा गौडीदास
परमानन्द १२ व्रत ।
१८६६ जे, व. ३ सिद्धि लूणिया तिलोकचन्द
व्रत ग्रहण
- ७) संवत् १८६६ मिगसर वदि १०, वीकानेर, श्राविका
चंपा

तीर्थ यात्रा—

आपके रचित स्तवनादि से आपने अनेक तीर्थों
यात्रा की, ज्ञात होता है जिनमें मुख्य ये हैं—

(XXXX) :

मिगसर वदी २ के रोज तो सर्व सहर निजीक है ।
कंकोत्री मेलसी अर पोह सुदी १५ किसनगढ सुं चालसी
भूला पाली होसी तिहां सुं माह सुदी ५ मी पाली सुं
चलजी नै शिरनारजी प्रमुख कुं विदा होसी जो । और
आवक आव (क, ए) घणा साथ होसी जो ।

(पत्र के ऊपर) :

उपाध्याय श्री क्षमाकल्याणजी गरि की वंदना
ज्यो अर कह्यो छै श्री सिद्धगिरिजी रा यात्रा सार
आवेज्यो ।”

(पत्र हमारे संग्रह में)

उपाध्याय क्षमाकल्याणजी रचित शत्रुञ्जय स्तव
जात होता है कि—

जयपुर के वोहरा धर्मसी के पुत्र कपूरचन्द ने
परिवार एवं स्वधर्मी के साथ संघ प्रयाण कर किशनगढ़
विशाल मंघ के साथ आ मिले, मार्ग में श्री चतु
पार्श्वनाथ एवं कलवर्द्धी पार्श्वनाथजी की यात्रा की एवं
भेरी पडा की ।

मकर प्राण के कलवर्द्धि नगर निवासी राज

तिलोकचन्दजी लूणीया के हिम्मतरामजी तथा नामक दो पुत्र हुये । इनमें सेठ हिम्मतरामजी के तथा जेठमलजी नामक २ पुत्र हुये । इन बन्धुओं में, मलजी अपने काका सुखरामजी के नाम पर दत्तक चांदमलजी लूणीया के पुत्र दीनान बहादुर सेठ य लूणीया थे ।”

विद्यादान—

आपके शिष्य प्रणिष्य तो आपके पास पढ़ते ही अन्य शाखा के यति गए भी आपके तत्त्वाधान में कर विद्वान हुए थे । जिनमें से सुमतिवर्द्धन व विशेष उल्लेखनीय हैं ।

सुमति वर्द्धन—

आप जैन तत्त्वज्ञान के विणिष्ट ज्ञाता थे । अ रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

१. समरादित्य चरित्र, स'वत् १८७४ भाव सुदि जयमेरु नगरे ।
२. उत्तमकुमार चरित्र ।
३. नवतत्त्व स्वरूप यंत्र ।
४. कर्म ग्रन्थ यंत्र ।

“हृस का लेहु बध हुआ को दिन १०-१२ हुए, फोडा फुंसो २/३ रहा है सो मिट जासी । पिड को दग्द तथा दमको आ जा (जो ? र ती सागी तरं है लेहु बहुत गया । सरोर सुस्त है, व्याख्यान उत्तराध्ययन १४ वां अध्ययन बांचे है, समगदित्य चरित्र पाना ८५ भया, चौथे भव के १ पानो वाली है” इत्यादि ।

इन पत्रों से आपकी शारीरिक परिस्थिति पर काफी प्रकाश पड़ता है । इस प्रकार शारीरिक अस्वस्थता वश सं० १८७३ के पोप कृष्ण १४ मंगलवार को बीकानेर में आपकी स्वर्गवास हुआ । दादाजी के स्थान में आपकी चरण पादुका और श्रीमध्व स्वामी मंदिर में आपकी मूर्ति है जिनके ले हमारे बीकानेर जैन लेख संग्रह के लेखांक ११५२, २०२ में छप चुके हैं । आपको एक सुन्दर मूर्ति सुगनजी के उपास में भी है ।

चित्र

आपके कई तत्कालीन चित्र भी प्राप्त हैं ।

१. बृहत् ज्ञान भण्डार में समुदाय-सह-इसका ब्ला “तर्क-संग्रह-फक्किका” में छपवा दिया है ।

२. दिल्ली से आपके रचित “सुमतिनाथ स्तवन

किया जो अभी सुगनजी के उपासरे के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें आपके नाम से क्षमाकल्याण ज्ञान-भंडार भी है।

श्री सिद्धचक्राय नमः श्रीपुण्डरीकादिगीतमंगणधरेभ्यो नमः "श्री बृहत्खरतरगणाधीश्वर-भट्टारक-श्री जिनभक्ति सूरिशिष्य प्रीतसागर गणेशिष्य वाचनाचार्य सविन श्रीमदमृतधर्मगणि शिष्योपाध्याय श्री क्षमाकल्याणगणिना मुपदेशात् श्री संघेन पुण्यार्थे, श्री वीकानेर नगरे इयं पौषध शाला कारिता संवत् १८१८ । इस पौषधशाला माहे शु समाचारी धारक सवेगी साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका ध ध्यान करें और कोई उजर करण पावै नहीं सही ॥२ लिखितं उपाध्याय श्रीक्षमाकल्याणगणिभिः संवत् १८६ मिति मार्गशीर्ष सुदि ३ दिने संव-समक्षम् ॥

उपाध्याय श्रीक्षमाकल्याणगणि स्वनिश्चा को पुस्त भंडार स्थापन कीया उसकी विगति लिखै है -

"ए ग्यान भंडार को पुस्तक कोई चोर लेवे अथ वेचै सो देवगुरु धर्म की विराधक होय भवोभव महादुः होय ।"

क्षमाकल्याणजी के प्रशिष्य महिमाभक्तिजी का पुस्त संग्रह काफी अच्छा था, जो बड़े उपाश्रय के बृहद् भंडार में सुरक्षित है ।



(१) केसरीचन्द (कल्याणविजय) (२) विजयचन्द (विजय)
 विजय) (३) विनयचन्द (विद्यानन्दन) (४) धर्मानन्द
 (धर्मविशाल । इनमें से कल्याणविजय के शिष्य गुणानन्द
 (गोविन्द) हुये जिनके शिष्य मोतीचन्द (महिमाभक्त)
 और उनके शिष्य शिवचन्द (सत्यसोम) और मुकनचन्द
 मुकनचन्दजी का शिष्य जयकण्ठ अभी विद्यमान है ।

दूसरे शिष्य विवेकविजय के शिष्य ज्ञानानन्द (ज्ञान)
 चन्द) हुये । उनके शिष्य मयाचन्द (मेरुधर्म) और
 (दयाराज) हुये । इनमें से मयाचन्द के शिष्य लक्ष्मण
 राज) और नन्दराम (नयमुन्दर) हुये तथा ठाकुरसी
 शिष्य का नाम सिरदारा था ।

धर्मानन्दजी के शिष्य मुगनजी (मुमतिविशाल)
 जिनके रचित अनेक पूजायें और चौबीसी आदि प्राप्त
 उपरोक्त परम्परा यति समाज की ही समझनी चाहिये ।

खरतरगच्छ में जो अभी साधु-साध्वी समुदाय है उन
 क्षमाकल्याणजी की परम्परा के ही साधु-साध्वी अधिक हैं
 साधु परम्परा सम्बन्धी 'मुख-चरित्र' आदि ग्रंथों द्वारा विवेक
 प्राप्तकारी प्राप्त की जा सकती है ।

आभार

इस समय हम पूर्ण विद्वत्प्रभा श्रीजी का भी
 आभार प्रदर्शित करना है, जिन्होंने "दो गुरु" विषय
 पर हमें मार्गदर्शित किया ।

—सम्पादक

(१२)

मुनि ज्ञानानन्द जी के मयाचन्द जी एवं गुणानन्दजी के
मोतीचन्दजी नामक शिष्य हुए ॥ २४ ॥

आस्तामुभौमौक्तिकचन्द्रधीनिधे-

शिष्यौ पनालाल मुकुन्दचन्द्रकौ ।

श्रीमन्मयाचन्द्रमुनेश्च कोऽप्यसू-

दित्यादि तत्तद्यतीनां परम्परा ॥२५॥

बुद्धि निधान श्री मोतीचन्दजी के पनालालजी एवं मुकुन्द-
चन्दजी नामक शिष्य हुए । मुनि मयाचन्दजी के भी कई
शिष्य थे । इत्यादि उन २ मुनियों की परम्परा जानना ॥२५॥

संवर्ण्यते किञ्चन किञ्चन क्षमा--,

कल्याणसाधो विलसत्प्रभावकम् ।

वृत्तं प्रवृत्तं प्रथमं प्रथान्वितं,

त्याज्यं यतो न प्रकृतं क्रियाविदा ॥२६॥

कार्य के जानकार विद्वान को प्रकरण की बात नहीं छोड़नी
चाहिये, अतः अब क्षमाकल्याणजी के प्रभावशाली चरित्र का
वर्णन किया जा रहा है ॥२६॥

श्रानीय टीका सुगमास्य निर्ममे,

सत्पण्डितो ह्येव चिरत्नमुद्धरेत्^१ ॥२६॥

वहीं पर उन्होंने भैरवाङ्ग से सर्वतोभद्र यन्त्र निकाल
उसको लाकर उसकी सुगम टीका भी आप ही ने बनाई
क्योंकि अच्छा विद्वान् ही पुराने तत्त्व का उद्धार क
सकता है ॥२६॥

बीजाक्षराणाम् हरहूंह इत्यतः.

प्रारम्भ आस्ते सरसूं स इत्यलम्

उच्चैस्तुपश्चस्वयिताः चतुर्ध्वः

कोष्ठेष्वथाङ्काः खहयेन्दु संमिताः ॥३०॥

उस यन्त्र में “ह र हूं हः” यहां से बीजाक्षरो का प्रार
है और स र सूं सः यहाँ तक समाप्ति है । उपर के ५
कोष्ठों में और नीचे के चार कोष्ठों में कुल मिलाकर १
अङ्क होते हैं ।

स्वाहान्त आदौ क्षिप ओमिति स्मृतौ,

मन्त्रोऽस्ति यन्त्रेऽत्र हि मध्ययंत्रित

१ चिरत्नं पुरातनं (तत्त्वं) उद्धरेत् उद्धृतुं शक्तः शक्ति लि

पूर्वतयोर्व्याकरणे मिथः पुनः-

न्यायादिशास्त्रेष्वपि दुर्गमाध्वसु

चर्चा जनाश्चर्यं विधायिनी चिरा-

याऽऽसीदचित्रीयत चैप पण्डितः ॥६०॥

उन दोनों अर्थात् मुनि श्री एवं पण्डित इनमें परस्पर सर्व प्रथम तो व्याकरण में जोरदार चर्चा हुई, शंक समाधान हुए, तत्पश्चात् न्यायादि शास्त्रों में बहुत समय तक चर्चा हुई। पण्डित इन मुनि श्री की वाक् पटु शंका-समाधानशैली देखकर दंग रह गये ॥६०॥

श्रीमानसिंहो नृपतिर्मुनेरगिरा,

संप्रैषयत् पुस्तकमेकमुध्रुरम्

प्राटीकि तत्प्रेक्ष्य च सूरिसामुना,

विद्वांसमाप्याऽनृजुवाऽप्यृजूभवेत् ॥६१॥

मुनि महाराज के कथनानुसार श्री मानसिंहजी ने एक बृहत्पुस्तक भेजी, उसे देख सूरि समान क्षमाकल्याण ने उस पुस्तक की टीका कर दी। हाँ, ठीक तो है, विद्वान के पास पहुँच कर कोई भी वस्तु, जो सरल होने पर भी सरल हो जाती है ॥६१॥

आप इस ब्रह्मपुर में क्या ही अच्छे विराजमान^१ हैं" इत्यु
भावों से मुनि श्री क्षमाकल्याणजी ने उन पार्श्वनाथ
की स्तुति की ॥७२॥

श्रीसांस्तुतः प्रस्थित आप सूरता-
ख्यं पत्तनं यत्र वसन्ति सूरताः^२

श्री शीतलं यत्र रुचा^३ सु सूरता-
माप्तं नरोऽर्चन्ति पितृ प्रसूरताः^४ ॥७३॥

॥ वहाँ से प्रस्थान करके आप श्री सूरत नगर में पवा
जहां दयालु सज्जन निवास करते हैं, जहां शोभ को शीतल
नाथ भगवान् की पूजा करते हुए समाभूत है कि हम सूर्य व
ही मानो पूजा कर रहे हैं ॥७२॥

१. "मनमोहन महाराज तीनभुवन-सिन्हाज । आछे लाल
नगर ब्रह्मपुर विराजियाजी" इत्यादि ॥ २. पदस्य संस्कृतानुवादः ।

२. सूरताः द्योतिवः ॥ ३. रुचा कान्त्या सूरता सूर्यस्य प्राप्तं श्री शीतलं नाम जिनेन

नरो मानवा अर्चन्ति । सूर्यस्यैव शीतलोऽपि सूर्येन मानिनि

॥ ४. इति श्वेतिश्रवः ॥ ५. आपः पितृ प्रसूरताः ॥ ६. आपः पितृ प्रसूरताः ॥

४. पितृ प्रसूरताः नद्यः नद्यः समागताः प्रसूर्यः मायं मध्य

५. पितृ प्रसूरताः इत्यमरः ॥ ६. आपः पितृ प्रसूरताः ॥

कुत्रापि राजन्मधुमाधवी स्मर-

क्रीड भुजङ्गप्रगतीत्कटं क्वचित् ॥१॥

सद्वर्धमानस्तवकं मुखर्षभा,—

दिस्तोममच्छाक्षरसंहितं वर

सन्नन्दनं सज्जिनचैत्यवन्दनं,

यन्निर्मितं कस्य करोति नो मुदम् ॥८०॥ “युग्म

श्री क्षमा कल्याण जी म. के वनाये हुए जिन चैत्य
वन्दन किन्हें आनंदित नहीं करते, जिनमें कहीं हरिणी व

१- एतद् युग्मम् । जिन चैत्यवन्दनपक्षे वनपक्षे चार्थं व्यनक्ति
हरिणी शार्दूल विक्रीडित-मधुमाधवी- कामक्रीडा- भुज-
प्रयातानि च्छन्दसां नामानि । जिन चैत्यवन्दन पक्षे वनपक्षे
हरिणीशार्दूल (व्याध) क्रीडा शोभितं केषांपि राजन्
शोभित क्षौद्ररसं तथा शोभित माधवीलता- काम विह-
सवर्गमनोत्कटं च । सन् विद्यमानो वर्धमानस्य महावीर-
स्तवकः स्तोत्रं यत्र तत् मुखे प्रारभे ऋषभादीनां स्तोम-
स्तोत्राणि यत्र तत्, अच्छा विणदाक्षराणां संहिता सा
यत्र तदिति चैत्यवन्दन पक्षे । वन पक्षे वर्धमानाः स्तवका
गुच्छा यत्र । मुखे ऋषभाद्योपवीनां स्तोमः समूहो यत्र, अ-
अक्षाणां विभीतकानां स्तोत्रं यत्र तत् । ततो हिनमित्या-
प्ययम् । सन्नन्दनं येष रंजक मित्युनयेत् ॥

श्री क्षमाकल्याणजी म. सा. की निश्रा में जोधपुर वा गडिया राजारामजी ने अजमेर तक संघ निकाला, एवं उस संघ को अजमेर निवासी त्रिलोकचन्द्रजी लूणिया ने शत्रु पहुंचाया जो चेत्री पूर्णिमा को वहां पहुँचा ॥८२॥

भोजाशरग्रामनिवास्युदारकीः,

श्राद्धेन्द्रचन्द्रस्य प्रियोऽथ नन्दनः

श्रीधर्मचन्द्रोऽत्र हि मालुवंशजो,

नन्दाङ्गवस्विन्दुमितेव्द आगमत् ॥८३॥

भोजासर निवासी इन्द्रचन्द्रजी के पुत्र मालु वंशीय श्री धर्मचन्द्रजी वि. सं. १८६७ में बीकानेर पधारे ॥८३॥

प्रयाद् यदाऽथं जिनराजमन्दिरं,

यातस्तदा योग्यपि भाषते स्म तम् ।

त्यक्त्वा भवं प्रव्रजितुं नु वाञ्छसि,

भो धर्मचन्द्रेदृश एव दृश्यसे ॥८४॥

जिस समय धर्मचन्द्रजी जिन मंदिर गये, वहीं पर पधारे हुए श्री क्षमाकल्याणजी म. सा. ने सामुद्रिक एवं निमित्त ज्ञान के बल से उनसे कहा कि धर्मचन्द्रजी क्या तुम दीक्षा लेना चाहते हो ? ॥८४॥

मुनि श्री ने उनकी बात को स्वीकार की एवं उसी वर्ष उन्हें दीक्षा दी । उनका नाम संस्कार पूर्व नाम से मिलता-जुलता किया गया—“मुनि धर्मानन्द” । ॥८७॥

यः कल्पसूत्रेषु ब्रह्मवन्नुत्तमं,

विज्ञः सुवर्णानि सुवर्णचूर्णकैः

संलेखयामास यतो मयीं बहु,

मेने न साऽघाऽपयशोऽनुकारिणोम् ॥८८॥

उन्होंने (धर्मानन्दजी) बहुत से कल्पसूत्रों को स्वर्णक्षरों द्वारा अंकित करवाया, वे स्याही को पाप एवं अपयशकारी मानकर उसे उचित नहीं समझते थे । ॥८८॥

लोकाऽथवस्विन्दुमितेऽथ वत्सरे,

रक्तं गुणलोकमुदीक्ष्य साध्विमम् ।

साम्यादिवाऽऽरञ्जयितुं परं क्षमा—

कल्याणको लोकममण्डयन्मुनिः ॥८९॥

किं किं किमेतदनुयोक्तुमितीव कर्णा-

भ्यर्णं गतेन किल निश्चलदृग्युगेन
सोऽभात्तदा तदुभयाऽऽलपितेऽस्येव,
वारात् स्थितेन चिबुके^१ च करद्वयेन ॥६६॥

कवि की कल्पना है कि उस समय आश्चर्य के मां व्यासजी की दोनों आंखें फूल कर कानों तक पहुँच गई, मानें वे आंखें कानों से यह पूछ रही हो कि "यह क्या हुआ? तुमने यह क्या सुना? द्विचकी संभालने हेतु हस्त-द्वय भी बार-बार वहाँ पहुँच रहे थे, मानों वे हाथ, आंख एवं कान की बातों का पता लगा रहे हों ॥६६॥

निजतपोऽतिशयेन स तापसः,

स्वमिह दर्शयतिस्म ततोऽपि माम्
मयि कृपास्ति हि तस्य, नमामि त-

मिति स निश्चितवाञ्छितवान्ध्रुवः ॥६७॥

व्यासजी ने अपने वन्धुओं को एतावत कर कहा, "मेरे

१. आश्रितृन्वोनेत्य वा भागवतस्य "चिबुक" इति मता

षडभ्रनिध्यवनिमितेव्द एकदा-

स्थितो जनैर्वहु मुनि राजसागरः

चतुर्मिताञ्जलऋतुमास आवस-

ज्जयान्वित जयपुरमृद्धिसिन्धुना ॥१००॥

जयपुर श्री संध की हादिके प्रार्थना के कारण संवत् १६०६ का चातुर्मास जयपुर में मुनि श्री राजसागरजी ने मुनि श्री ऋद्धिसागरजी म. के साथ किया ॥१००॥

कदाप्यथो अवसरमाप्य संगतो,

महाशयः "सुख" इति नाम कश्चन

स्वशिष्यसद्विनयभृद्दृद्धिसागरा-

ऽनुमंडितं स्म वदति राजसागरम् ॥१०१॥

एक वार मुनि श्री राजसागरजी, अपने विनयी शिष्य श्री ऋद्धिसागरजी म. के साथ विराजमान थे, उस समय "सुख" नामक कोई महाशय वहां आकर मुनि श्री के प्रति बोला ॥१०१॥

शिखोव^१ भा मुनिवर ! वामुं चामृतुं,

चिरादह बहु-बहु प्रत्यपालयम् ।

1. शिखी मयूरः । "शिखावलः शिखीकेकी, मेघनादानु-
लास्यपि" इत्यमरः ।

विधाप्य चाचधिरु^१ सुधर्मं शालिका,

मभूषयच्छुभममुमेव नीवृतम् ॥११॥

चातुर्मास पूर्णहृति के बाद मुनि श्री राजसागरजी ने जयपुर से विहार कर ग्रामानुग्राम विहरण करने लगे फिर स्वयं को विहार में असमर्थ जानकर मारवाड़ में स्थान पर निवास करने लगे ॥१११॥

स्वशिष्यं श्रोकलितमतौ विलोक्य स

समर्थतां गणिपदवीमदाद् गुरु

भवेत्तरामिह भुवि धर्मवर्धनम्,

तमिशात् पृथग्यितुं सशिष्यकम् ॥१२॥

मुनि महाराज श्री राजसागरजी म. ने अपने शिष्य श्री ऋद्धिसागरजी म. को योग्य एवं समृद्ध जानकर "गणिपदवी दी । एवं इस भू-भाग पर धर्म कार्यों में तेजी से तदर्थ उनको अपने शिष्य सहित पृथक् विचरण की भी मति दे दी ॥११२॥

1. मरु इति अधिरु, मरुदेणे इत्यर्थः ।

तदन्तिके स भगवदादिसागरो,

मुनिव्रतं व्यधरत शान्तमानसः ॥११५॥

जो नगर बड़े २ मार्गों द्वारा मुशोभित हो ऐसे फलों
नगर में वि. सं १६२५ में गणिवर्य श्री ऋद्धिसागरजी म.
पास शान्तचित्त भगवानसागरजी म. ने दीक्षा ग्रहण की
॥११५॥

सुखसागरशिष्यास्तु, भगवत्सागरः क्षमा ।

चिदानन्दो राम-रत्न-कल्याणश्च ततोऽभवत् ॥११६॥

श्री सुखसागरजी म. के शिष्यों के क्रमशः ये नाम हैं ।
(१) श्री भगवानसागरजी म. (२) श्री क्षमासागरजी म.
(३) चिदानन्दसागरजी म. (४) रामसागरजी म. (५)
रत्नसागरजी म. (६) कल्याणसागरजी म. ॥११६॥

भगवत्सागरशिष्या, धनसुमतिगुमानचैतन्याः ।

त्रैलोक्योऽपि तथा, हरिसागर इत्येत आख्याताः

॥११७॥

श्री भगवानसागरजी म. के शिष्यों के क्रमशः ये नाम
हैं । (१) धनसागरजी म. (२) सुमतिसागरजी म.

श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (७)

(त्रोटक-छन्दः)

जयवन्तमनन्तगुणैर्निभृतम्;

पृथिवीसुतमद्भुतरूपभृतम् ।

निजवीर्यं विनिर्जितकर्मवलं,

सुरकोटिसमाश्रितपङ्कमलम् ॥१॥

निरुपाधिकनिर्मलसौख्यनिधिं,

परिवर्जित विश्वदुरन्तविधिम् ।

भववारिनिघेः परपारमितं,

परमोज्ज्वलचेतनयोन्मिलितम् ॥२॥

कलघीतसुवर्णशरीरधरम्

शुभपार्श्वं सुपार्श्वं जिनप्रवरम्

विनयाऽवनतः प्रणमामि सदा,

हृदयोद्भवभूरितरप्रमुदा ॥३॥

श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (८)

(वंशस्थ-छन्दः)

अनन्तकान्तिप्रकरेण चारुणा,

कलाधिपेनाधितमात्मसाम्यतः ।

जिनेन्द्र चन्द्रप्रभ ! देवमुत्तमं,

भवन्तमेवात्महितं विभावये ॥१॥

4

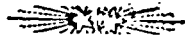
5

6

(६८)

देवाधिदेव ! तव दर्शनवल्लभोऽहं;

शश्वद् भवासि भुवनेश ! तथा विधेहि ॥ ३ ॥



श्रीशीतलनाथजिनेन्द्र—चैत्यवन्दनम् (१०)

(शोर्दूलविंकीडित-छन्दः)

कल्याणाङ्कुरवर्धने जलधरं सर्वाङ्गिसंपत्करं,
विश्वव्यापियंशः कलापकलितं कैवल्यलीलाश्रितम् ।
नन्दकुक्षिसमुद्भवं दृढरथदोर्गापतेर्नन्दनं
श्रीमत्सूरतवन्दिरे जिनवरं वन्दे प्रभुं शीतलम् ॥ १ ॥

श्वज्ञानविशुद्धसिद्धिपदवीहेतुप्रबोधं दंष्ट्रं,
भव्यानां वरभक्तिरक्तमनसां चेतः समुल्लासयन् ।
नित्यानन्दमयः प्रसिद्धसमयः सद्भूतसौख्याश्रयो,
दुष्टाऽनिष्टतमः प्रणोशेतरणिर्जीयाज्जिनः शीतलः ॥ २ ॥
सद्भक्त्या त्रिदशेश्वरैः कृतचुक्तिभस्विद्गुणालंकृतिः,
सत्कल्याणसमुद्यतिः शुभमेतिः कल्याणकृत्संगतिः ।
श्रीवत्साङ्कसमन्वितस्त्रिभुवनत्राणे गृहीतव्रती,
भुयाद् भक्तिभृतां संदेष्टवैरदः श्रीशीतलंस्तीर्थकृत् ॥ ३ ॥

पार्थिवेश्वरनुपूज्यवेष्टमनि, प्राप्तपुण्यजनपं जगत्प्रभुम् ।
वामुपूज्यपरमेष्ठिनं सदा, के स्मरन्ति न हि तं विपश्चितः?

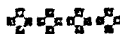
॥३॥



श्रीविमलनाथजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (१३)

(मन्दावान्ता-छन्दः)

संसारेऽस्मिन् महति महिमाऽमेयमानन्दिरूपं,
त्वां सर्वज्ञं गकलनुकृतिध्रेणिसंसेव्यमानम्
दृष्ट्वा सम्यग्विमलसदसज्ज्ञानधाम प्रधानं,
मंप्राप्तोऽहं प्रशममुखदं संभृतानन्दव्रीचिम् ॥१॥
ये तु स्वामिन् ! कुमतिपिहितस्काराद्बोधमूढाः,
सौम्याकारां प्रतिकृतिमपि प्रेक्ष्य ते विष्णुपूज्याम् ।
द्वे प्रोद्भूतेः कलुषितमनोवृत्तयः स्युः प्रकामं,
मन्ये तेषां गतशुभदृशां का गतिर्भाविनीति ॥२॥
ज्यामामूनो ! प्रतिदिनमनुस्मृत्य विज्ञानिवाक्यं,
हित्वाऽनार्यं कुमतिवचनं ये भुवि प्राणभाजः ।
पूर्णानन्दोल्लसितहृदयास्त्वां समाराधयन्ति,
श्लाघ्याचाराः प्रकृतिमुभयाः सन्ति धन्यास्त एव ॥३॥



निःशेषार्थप्रादुष्कर्ता सिद्धे भर्ता संधर्ता,

दुर्भावानां दूरे हर्ता दीनोद्धर्ता संस्मर्ता
सद्भक्तेभ्यो मुक्तेर्दाना विश्वत्राता निर्माता,

स्तुतो भक्त्या वाचोयुक्त्या चेतोवृच्या ध्येयात्मा ॥२॥

सम्यग्दृग्भिः साक्षाद् दृष्टो मोहाऽस्पृष्टो नाकृष्टः,

स्रोतोग्रामैः संपज्ज्येष्ठः साधुश्रेष्ठः सत्प्रेष्ठः ।

श्रद्धायुक्तस्वान्तैर्जुष्टो नित्यं तुष्टो निर्दुष्ट-

स्त्याज्यो नैव श्रीवज्राङ्को नष्टातङ्को निःशङ्कम् ॥३॥

श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (१६)

(द्रुतविलम्बित-छन्दः)

विपुलनिर्भरकीर्तिभरान्वितो,

जयति निर्जरनाथनमस्कृतः ।

लघुविनिर्जितमोहधराधिपो,

जगति यः प्रभुशान्तिजिनाधिपः ॥१॥

विहितशान्तसुधारसमज्जनं,

निखिलदुर्जयदोषविवर्जितम् ।

परमपुण्यवतां भजनीयतां,

गतमनन्तगुणैः सहितं सताम् ॥२॥

तमचिरात्मजमीशमधीश्वरं,

भविकपद्मविवोधदिनेश्वरम् ।

श्रीअरनाथजिनेन्द्र—चैत्यवन्दनम् (१८)

(रामगिरिरागेण गीयते)

दिव्यगुणधारकं भव्यजनतारकं,

दुरितमतिवारकं सुकृतिकान्तम् ।

जितविषमसायकं सर्वसुखदायकं,

जगति जिननायकं परमशान्तम् ॥ १ ॥

स्वगुणपर्यायसंमीलितं नौमि तं,

विगतपरभावपरिणतिमखण्डम् ।

सर्वसंयोगविस्तारपारंगतं,

प्राप्तपरमात्मरूपं प्रचण्डम् ॥दिव्यगुण०॥ २ ॥

साधुदर्शनवृतं भाविकैः प्रस्तुतं,

प्रातिहार्यष्टकोद्भासमानम्

सततमुक्तिप्रदं सर्वदा पूजितं,

शिवमहीसार्वभौमप्रधानम् ॥दि०॥ (त्रिभिविशेषकम्)



श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (१९)

(गीतनी चाल)

कुम्भसमुद्भवसंमदाकरगुणवर !

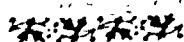
हे मल्लिजिनोत्तमदेव !, जय जय विश्वपते ! ॥ १ ॥

कृत्यं स्वोचितमेव यतः किल कारणं,
जनयति नात्मविरुद्धमिहाऽसाधारणम् ॥३॥
(त्रिभिविशेषकम्)

श्रीनमिनाथजिनेद्र-चैत्यवंदनम् (२१)

(पञ्चचामर-छन्दः)

नमीश निर्मलात्मरूप सत्यरूप ? शाश्वतं,
परोर्ध्वसिद्धिसौधमूर्ध्नि सत्स्वभावतः स्थितम्
विधाय मानसाब्जकोशदेशमव्यवतिनं,
स्मरामि सर्वदा भवन्तमेव सर्वदशितम् ॥१॥
प्रफुल्लक्रीञ्चलाञ्छन ! प्रभूततेजसोज्ज्वलं ते,
दिवाकरस्य वा महेश्वराऽभिदर्शनेन मे ।
प्रमादवधिनी सुदुर्मतिनिशेव दुर्भंगा,
गता प्रणाशमाशु हृत्कजे विनिद्रताऽभवत् ॥२॥
निरस्तदोषदुष्टकण्टकायमत्यसंस्तवो,
भवे भवे भवत्पदाम्बुजैकसेवकः प्रभो ! ।
भवेयमीदृशं भृशं मदीयचित्तचिन्तितम्,
तव प्रसादतो भवत्ववन्ध्यमेव सत्वरम् ॥३॥

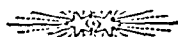


अवाप्य यत्प्रसादमादितः पुरुश्रियो नरा,
भवन्ति मुक्तिगामिनस्ततः प्रभाप्रभास्वराः ।
भजेयमाश्वसेनिदेवदेवमेव सत्पदं,
तमुच्चमानसेन शुद्ध बोधवृद्धिलाभदम् ॥३॥

श्रीमहावीरजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (२४)

(पृथ्वी-छन्दः)

वरेण्यगुणवारिधिः परमनिर्वृतः सर्वदा,
समस्तकमलानिधिः सुरनरेन्द्रकोटिश्रितः ।
जनालिमुखदायको विगतकर्मवारो जिनः,
सुमुक्तजनसंगमस्त्वमसि वर्धमानप्रभो ! ॥१॥
जिनेन्द्र ! भवतोऽद्भुतं मुखमुदारविम्बस्थितं,
विकारपरिवर्जितं परमशान्तमुद्राङ्कितम् ।
निरीक्ष्य मुदितेक्षणः क्षणमितोऽस्मि यद्भावनां,
जिनेश जगदीश्वरोद्भवतु सैव मे सर्वदा ॥२॥
विवेकिजनवल्लभं भुवि दुरात्मनां दुर्लभं,
दुरन्तदुरितव्यथाभरनिवारणे तत्परम् ।
तवाङ्ग पदपद्मयोर्युगमनिन्द्यवीरप्रभो !,
प्रभूतसुखसिद्धये मम चिराय संपद्यताम् ॥३॥



(६०)

सुस्पष्टकान् श्लोकानेकविंशतिचाधिकम् ।

शतं तेषामनुवादं, मणिप्रभरत्नाकरः ॥१२२॥

संवत् त्रिंशत्शून्यनेत्रे, शुक्ले फाल्गुनिकेशुभे ।

हिन्दी भाषायांचकार, चतुर्दश्यां तिथौ रुचि ॥१२३॥

इस प्रकार १२१ श्लोकों का हिन्दी भाषा में अर्थ २०३३ फाल्गुन सुद १४ को अनुयोगाचार्य पूज्य गुश्री कान्तिसागरजी म.सा. के शिष्य मुनि श्री मणिप्रसागरजी ने संपूर्ण किया ॥१२३॥

॥ इति समाप्तम् ॥



यो विज्ञानमयो जगत्त्रयगुरुर्य सर्वलोकाः श्रिताः,
 सिद्धिर्येन वृता समस्तजनता यस्मै नति त
 यस्मान्मोहमतिर्गता मतिभृतां यस्यैव सेव्यं वचो,
 यस्मिन् विश्वगुणास्तमेव सुतरां वन्दे युगादीश्वरम्

श्रीअजितनाथजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (२)

(मालिनी-छन्दः)

सकलसुखसमृद्धिर्यस्य पादारविन्दे,
 विलसति गुणरक्ता भक्तराजीव नित्य
 त्रिभुवनजनमान्यः शान्तमुद्राऽभिरामः,
 स जयति जिनराजस्तुङ्गतारङ्गतीर्थे ॥
 प्रभवति किल भव्यो यस्य निर्वर्णनेन,
 व्यपगतदुरितीघः प्राप्तमोदप्रपञ्च
 निजबलजितरागद्वेपविद्वेपिवर्गं,
 तमजितवरगोत्रं तीर्थनाथं नमामि ॥
 नरपतिजितशत्रोर्वशरत्नाकरेन्दुः,
 सुरपति-पतिमृष्यैर्भक्तिदक्षैः समर्च्य
 दिनपतिरिव लोकेऽप्यास्तमोहान्वकारो,
 जिनपतिरजितेशः पातु मां पुण्यमूर्ति ॥३॥

(६४)

जगति कान्तहरीश्वरलाञ्छित—

कमसरोरुह ! भूरिकृपानिधे ! ।

मम ममीहितसिद्धि विधायकं,

त्वदपरं कमपीदृन तर्कये ॥२॥

प्रवरगमंवर ! मंवरभूपते—

स्तनय ! नीतिविचक्षण ! ते पदम् ।

शरणमग्नु जितेण ! निरन्तर,

मचिरभक्तिगुयुक्तिभृतो मम ॥३॥

श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्र-चैत्यचन्दनम् (५)

(उपेन्द्रव्यान्ददः)

मुवर्गवर्गा हरिणा मवर्गा,

मनावन मे मुमानिर्वीयान् ।

एतन्वतो दृष्टवृष्टिगण—

द्विनेन्द्र ! नैव मियि एव कारो ॥१॥

जितेवरो मेवतरेन्द्रगु—

वैश्वानरो मवेति मयमे मे ।

एतन्वतो दृष्टवृष्टिगण ! — म—

ममो मय वेवर्गद मय मय ॥ २ ॥

एतन्वतो दृष्टवृष्टिगण ! —

मय मय वेवर्गद मय मय ॥ ३ ॥

